चने का उक्टा (विल्ट) रोग

नियंत्रण–

1. रोगी पौधे को खेत से निकाल दे।
2. समय पर बुवाई करें अर्थात अक्टूबर माह के अंत में या नवंबर माह के प्रथम सप्ताह में करें।
3. उक्टा रोग रोधी किस्म का चयन करें जैसे–
   - देशी चना– जे.जी. –315, 322, 76, 130, जाकी–9218, जे.जी–16, 12
   - काबुली चना– जे.जी.के.–1, 2, 3
4. बुवाई के पूर्व बीजोपचार, बावस्टिन + थायरम (2 ग्राम + 1.5 ग्राम/किग्रा.) बीज के हिसाब से उपयोग करें।

2. **सूखा जड़ सड़न (ड्राई फुट राट)–** यह रोग राइजोक्टोनिया बटाटीकोला नामक फफूंद द्वारा होता है। यह रोग के लक्षण फल्ली बनते समय तथा दाना भरते समय की अवस्था पौधे का सूखे घास जैसा रंग होने लगता है। जड़े काली होकर सड़ जाती है। तथा तोड़ने पर कड़क से टूट जाती है।

नियंत्रण–

1. बीजों का बीज बुवाई के पूर्व उपचार, बावस्टिन + थायरम (2 ग्राम + 1.5 ग्राम/किग्रा.) बीज के हिसाब से उपयोग करें।
2. फसल चक्र अपनाना चाहिए।
3. जैविक रोग नियंत्रण के लिए 4 किग्रा. ट्राइकोडर्मा विरडी 100 किग्रा सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर बुवाई से पूर्व प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में मिलाये।
4. खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. का 2 प्रतिशत घोल का पौधों के जड़ क्षेत्र में छिड़काव करें।

3. **चने में ऐस्कोकाइटा अंगमारी रोग–** यह रोग बीज व मृदा जड़ित रोग है। इसका फैलाव वायवीय फफूंद स्पोर पिक्निडिओस्पोर के द्वारा होता है। रोग के लक्षण फरवरी मार्च के महीने में दिखाई देते है। इस रोग के लक्षण पौधे के समस्त भाग जैसे तने, पत्तियां एवं फलियों पर छोटे गोल व भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते है।

चने में ऐस्कोकाइटा अंगमारी रोग

नियंत्रण–

1. बीजों को बुवाई के पूर्व कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. का 2 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीजउपचार करें।
2. खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देने पर मेन्कोजेब 75 डब्ल्यू.पी. का 3 ग्राम प्रति लीटर या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 डब्ल्यू.पी. का 3 ग्राम प्रति लीटर की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।

कीट प्रबंधन

चना फल्ली छेदक– यह कीट चने की फसल पर लगने वाले कीटों में सबसे महत्वपूर्ण कीट है। इस कीट के प्रकोप से चने की उत्पादकता में 20–30 प्रतिशत की हानि देखी गई है। यदि इसका अत्यधिक प्रकोप रहा तो 70–80 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। इस कीट के अण्डे लगभग गोल पीले रंग के एक–एक करके पत्तियों पर बिखरे रहते है, अण्डों से 5–6 दिन में नवनिर्मित शिशु (सुंडी) निकलती है। जो कोमल पत्तियों को खुरच–खुरच कर खाती है। जैसे–जैसे सुंडी बड़ी हो जाती है, यह फलियों में छेद करके सारा का सारा दाना खा जाती है। यह सुंडी पीले, नारंगी, गुलाबी, भूरे या काले रंग की होती है। इसकी पीठ पर विशेषकर हल्के और गहरे रंग की झारियां होती है।

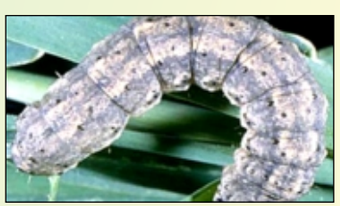

चना फल्ली छेदक

कटुआ या कुतरा सुंडी

समेकित कीट प्रबंधन (आई.पी.एम.)–

1. सस्य क्रियाओं द्वारा नियंत्रण–
   - फसल की बुवाई समय से करें।
   - अगेती प्रजातियां एवं मध्य अक्टूबर माह में चने की फसल की बुवाई करें।
2. अंतरवर्ती फसल– चने की फसल के साथ–साथ सरसों या धनियां या अलसी को प्रति 10 कतार चने के बाद एक या दो कतार लगाने से चने की इल्लियों का प्रकोप कम हो जाता है।
3. सुरक्षात्मक एवं कवचीय फसलों का उपयोग– चने की फसल के चारों ओर पीले गेंदा फूल लगाने से चने की इल्लियों का प्रकोप कम किया जा सकता है। प्रौढ मादा कीट पहले गेंदा फूल पर अण्डे देती है, अत: तोड़ने योग्य फूलों को समय–समय पर तोड़कर उपयोग करने से अण्डे एवं इल्लियों की संख्या कम करने में मदद मिलती है।
4. आकर्षक जाल/फेरोमोन ट्रेप (कल्चर क्रिया): इसका प्रयोग कीट के प्रकोप बढ़ने से पहले चेतावनी के रूप में करते है। जब नर कीटों की संख्या प्रति रात्रि प्रति जाल (ट्रेप) 4–5 तक पहुंचने लगे तो समझना चाहिए। एवं कीट नियंत्रण आवश्यक है। ''फेरोमेन ट्रेप की 4–5 जाल प्रति हेक्टेयर'' की दर से उपयोग करें।

फेरोमोन ट्रेप

लाईट ट्रेप

5. जैविक नियंत्रण– एन.पी.पी का साधारणत: चने की फसल में उपयोग किया जाता है, इस जैविक विशाणु का उपयोग 250 सुंडी/हेक्टेयर अनुशांसित है।
6. अण्डा परभक्षी– ट्राइकोग्रामा चिलोनिस का उपयोग परभक्षी के रूप में फल्ली भेदक कीट के लिए किया जाता है। इसमें खेतों में इसके अण्डो को छोड़ा जाता है, एवं यह कुछ दिनों में बहुलीकरण करके उनको धीरे–धीरे नश्ट कर देता है।
7. खुटियों का प्रयोग– सामान्यत: फली भेदक एवं कटुआ कीट नियंत्रण हेतु चने के खेतों में चिड़ियों के संरक्षण हेतु खुटियों का प्रयोग किया जाता है। यह खुटियां टी (T) आकार की होती है। अत: प्रति हेक्टेयर 40–50 खुटियों का प्रयोग किया जाता है।
8. रासायनिक कीट नियंत्रण–

क.	कीटनाशी	मात्रा
1.	क्लोरोपायरीफास 20 ई.सी	1500 मिली/हेक्टेयर
2.	इडोक्साकार्ब 14.5 एस.सी.	300 ग्राम/हेक्टेयर
3.	इमामेक्टीन बेन्जोइट	270 ग्राम/हेक्टेयर
4.	स्पाइनोसेड 45 प्रतिशत एस.सी.	270 ग्राम प्रति हेक्टेयर
5.	फेनप्रोपेथ्रीन 100 ए.आई.	270 ग्राम प्रति हेक्टेयर
6.	रायनेक्सीपायर	270 ग्राम प्रति हेक्टेयर

2. **कटुआ या कुतरा सुंडी–** यह कीट मिट्टी में 2–4 इंच की गहराई में छुपा रहता है। यह पौधे के शुरूआती भाग टहनियों और तने को काटता है। यह कीट का रंग गहरा भूरा रंग का होता है। और सिर पर लाल रंग का होता है।

नियंत्रण–

1. फसल चक्र अपनाना चाहिए।
2. क्लोरोपायरीफास 1.5 लीटर/हेक्टेयर या इडोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. 300 ग्राम/हेक्टेयर या इमामेक्टीन बेन्जोइट की 200 ग्राम/हेक्टेयर 500 लीटर पानी घोलकर छिड़काव करें।

कटाई एवं गहाई– चने की पौधे की पत्तियां हल्की पीली अथवा हल्की भूरी हो जाती है। या झड़ जाती हैं, तब फसल की कटाई करना चाहिए। और फली से दाना निकालकर दानों को दांतों से काटा जाये तो यदि कट की आवाज आये तो उस अवस्था में हमारी फसल कटाई के लिए पूर्णत: तैयार है। कटाई के पश्चात 4–5 दिन तक अच्छी धूप में सुखाने के पश्चात, भण्डारण कार्य किया जाता है।

उपज– चना की उपज मुख्य रूप से फसल प्रबंधन पर निर्भर करती है। यदि अनुसंशित विधि से चना की खेती की जाती है। तो सामान्यत: देशी चने की उपज 18–20 तथा काबुली चने की उपल 15–18 क्विंटल/हेक्टेयर तक उपज प्राप्त होती है।

भण्डारण– भण्डाण के लिए दानों में लगभग 10–12 प्रतिशत नमी होने पर भण्डारण करना उपयुक्त होता है।

इस संबंध में और अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें:

डॉ. जे.एस. मिश्रा

निदेशक, भाकृअनुप–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय,
महाराजपुर, जबलपुर – 482 004 (म.प्र.)
फोन: 91–761–2353934 फैक्स : +91–761–2353129

Amrit#0761-2413943

विस्तार पुस्तिका : DWR/57/2020

चना फसल की उत्पादन तकनीक

प्रस्तुतकर्ता–वी. के. चौधरी, पी. के. सिंह, चेतन सी. आर., धर्मेंद्र बघेले, जैनपाल राठौर
तकनीकी सहयोग– संदीप धगट

(बायोटेक –किसान हब प्रोग्राम के तहत)
भा.कृ.अनु.प. – खरपतवार अनुसंधान निदेशालय
जबलपुर – 482 004 (मध्यप्रदेश)
ICAR - Directorate of Weed Research
Jabalpur - 482 004 (MP)
(ISO 9001:2015 Certified)

वानस्पतिक नाम	–	साइसर एरिटेनम
परिवार	–	लेग्युमिनेसी
उत्पति	–	दक्षिण पश्चिमी एशिया

चना का परिचय– भारत में दलहनी फसलों में चना का मुख्य स्थान माना जाता है, चने की खेती भारत में मुख्य रूप से उत्तरप्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान तथा बिहार में की जाती है। देश के कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत इन्हीं प्रदेशों से होता है। भारत वर्ष में 2019–20 में 95.59 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में चना फसल लगाई गई तथा उत्पादन 87.78 लाख टन है। भारत में चने की सबसे अधिक क्षेत्रफल एवं उत्पादन वाला राज्य मध्यप्रदेश है। यह रबी की मुख्य फसल मानी जाती है, मध्यप्रदेश के विभिन्न जिले दमोह, सागर, विदिशा, उज्जैन, मंदसौर, इंदौर, शाजापुर, देवास, राजगढ़ मुख्य जिले है।

उपयोगिता– सामान्यत: चने का उपयोग दालों के रूप में किया जाता है, इसके अंकुरित बीजों के खाने से स्कर्वी रोग की उग्रता कम हो जाती है, तथा इसके सेवन से रक्त का शुद्धिकरण होता है, इसके दानों में 21 प्रतिशत प्रोटीन होता है। जिसके कारण चने का दालों में अपना एक अलग ही वर्चस्व है।

जलवायु– चना कम शुश्क एवं ठंडे जलवायु वाली फसल है। इसे रबी के मौसम में उगाया जाता है, चना की फसल के लिए उपयुक्त तापमान 24–30 सेंटीग्रेड उपयुक्त माना जाता है। तथा इसकी खेती के लिए मध्यम वर्शा द्व60–90 सेमी.ऋ वार्शिक वर्शा ओर सर्दी वाले क्षेत्र सर्वाधिक उपयुक्त है।

संरक्षित खेती के द्वारा चना उत्पादन– कृषि की वह पद्धति जिसके अंतर्गत संसाधन सरंक्षण तकनीकी की सहायता के टिकाऊ उत्पादन स्तर के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुए फसल उत्पादन किया जाताहै। संरक्षित खेती मृदा की ऊपरी व निचली सतह के अंदर प्राकृतिक जैविक कियाओं को बढ़ाने पर आधारित है। संरक्षण खेती तीन मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित है। जैसे न्यूनतम जुताई, स्थायी रूप से मिट्टी का अच्छादित करना तथा फसल विविधीकरण को अपनाकर ही फसल उत्पादन के स्तर को टिकाऊ बनाया जा सकता है। संरक्षित खेती प्रणाली में उपलब्ध संसाधनों का इष्टतम, उपयोग एवं संरक्षण करते हुए, किसी स्थान की भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार टिकाऊ फसल उत्पादन लेने के लिए नये–नये तरीके अपनाये जाते है।

भारत में संरक्षित खेती की वर्तमान स्थिति– वर्तमान में वैश्विक स्तर 125 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है, संरक्षित खेती को बढ़ावा देने वाले देशों में अमेरिका ब्राजील, अर्जेटीना, कनाडा और आस्ट्रेलिया अग्रणी देश है, भारत में संरक्षित खेती अभी शुरूआती चरणों में पिछले कुछ वर्शो में जीरो जुताई ओर संरक्षित को अपनाने से लगभग 1.5 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र का विस्तार हुआ है। गंगा सिंधु के मैदानी इलाकों में चावल, गेहूं, कृशि प्रणाली में गेहूं में संरक्षण आधारित कृषि को अपनाया जा रहा है। भारत में राज्य कृशि विश्व विद्यालयों और आई.सी.ए.आर. संस्थानों के उपयुक्त प्रयासों से संरक्षित खेती के विकास और प्रसार को बढ़ावा मिल रहा है।

जलवायु परिवर्तन में संरक्षित खेती का योगदान– वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन की वजह से समय, वर्षा, अनियमित वर्षा जल का वितरण, ओला पाला, अतिवृष्टि कीट एवं बीमारी का प्रकोप इत्यादि जैसे कई गंभीर समस्याएं विश्व के सामने खड़ी है, हमें अपना भविष्य या भावी पीढ़ी सुरक्षित रखने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रबंधन के लिए सतर्क होने की जरूरत है। आज के इस प्रतिस्पर्धा के दौर में किसान अधिक से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए अपने खेतों में अंधाधूंध रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का प्रयोग कर रहा है। जिससे मिट्टी में पौधों के लिए पोषक तत्व का संतुलन दिनों दिन बिगड़ रहा है। जहां एक तरफ मृदा की घटती उत्पादन क्षमता समस्या है, वहीं दूसरी तरफ बढ़ती हुई जनसंख्या खाद्यान्न सुरक्ष की चिंता का विशय बनी हुई है ऐसी स्थिति में संरक्षित खेती ही हमारे सामने मात्र एक विकल्प के रूप में उभरकर सामने आती है।

संरक्षित तकनीकें– संरक्षित खेती की तकनीकी के अंतर्गत, फसल चक्र अपनाना, जीरो टिलेज, सूक्ष्म सिंचाई, जरूरत के अनुसार भूमि का समतलीकरण, फसल अवशेश प्रबंधन को बढ़ावा आदि प्रक्रिया सम्मिलित है, इन सभी तकनीक के उपयोग से वातावरण में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ खाद्य सुरक्षा के लिए भी संरक्षित खेती अपनानी चाहिए।

संरक्षित खेती के लाभ–

- संरक्षित खेती की वजह से जमीन की उत्पादकता में काफी ईजाफा होता है। साथ ही पानी, उर्जा और जमीन की उर्वरता का भी संरक्षण होता है।
- संरक्षित खेती में मिट्टी की न्यूनतम जुताई की जाती है। जिससे ईधन एवं मानव श्रम दोनों की बचत होती है। क्योंकि कल्टी–वेटर या रोटावेटर से मृदा की जुताई करने पर मृदा की भौतिक या रासायनिक गुणों में परिवर्तन आता है। जिससे मृदा क्षरण को बढ़ावा मिलता है। अर्थात् न्यूनतम जुताई करने से मृदा क्षरण को रोका जा सकताहै।
- संरक्षित खेती में पांरपरिक खेती की तुलना में 25–30 प्रतिशत तक समय, ईधन व श्रम की बचत होती है। साधारणतया संरक्षित खेती में प्रति हेक्टेयर प्रति मौसम 5000 रूपये तक की बचत होती है।
- संरक्षित खेती द्वारा खेती में कीट, पतंगों एवं रोगों का प्रकोप आमतौर पर कम दिखाई देता है।
- इस खेती में प्रयोग मल्चिंग के द्वारा खेतों में जल आवश्यकता को संरक्षण किया जा सकता है एवं खरपतवारों की वृद्धि को कम करना है।
- संरक्षित खेती को करने से बड़े पैमाने पर कार्बन डाइ ऑक्साइड की मात्रा को कम किया जा सकता है। क्योंकि बिना जुता खेत कार्बन डाइऑक्साइड को सोख लेता है, जैसे वातावरण में ग्लोबल वार्मिंग को कम करने में मदद मिलती है।
- संरक्षित खेती द्वारा मृदा में जीवाणु कवक जो कि लाभ दायक होते है। उनकी बढ़ोतरी होती है, और मृदा की उर्वरता बढ़ाने में सहायक होते है।
- संरक्षित खेती से किसानों की आय में बिना पैसे खर्च किये अधिक उपज एवं मृदा की नमी तथा सभी उपलब्ध स्त्रोतों का प्रयोग आसानी से किया जा सकता है।
- संरक्षित खेती में पारंपरिक खेती की तुलना में समय, धन तथा श्रम की बचत के साथ–साथ उत्पाद में गुणवत्ता विकसित होती है।

मृदा का चुनाव– चने की खेती दोमट भूमि से मटियार भूमि में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इसकी खेती हल्की से भारी मृदा में की जाती है। किन्तु अधिक जलधारण क्षमता एवं उचित जल निकास वाली मिट्टी उपयुक्त रहती है।

मृदा का पी.एच. मान– मिट्टी का पी.एच मान साधारण 6–7.5 उपयुक्त रहता है।

उन्नत किस्में–

देशी चने की प्रजातियां–

क्र.	किस्म	अवधि	उपज(क्विं/हे.)	विशेशताएं
1.	जे .जी .–14	95–110	20–25	उक्टा रोग प्रतिरोधी, अधिक तापमान सहनशील एवं दाल बनाने हेतु उपयुक्त
2.	जाकी–9218	112	18–20	सिंचित एवं असिंचित खेती के लिए उपयुक्त
3.	जे .जी .–63	110–120	20–25	उक्टा , कालर सड़न सूखासड़न हेतु रोग प्रतिरोधी किस्म है। सम्पूर्ण मध्यप्रदेश हेतु उपयुक्त है।
4.	जे .जी–412	90–100	15–18	देर से बुवाई हेतु अनुशांसित है।
5.	जे .जी .–130	100–120	19	असिंचित व उक्टा के लिए उपयुक्त किस्म
6.	जे .जी–16	110–120	18–20	यह किस्म सिंचित एवं असिंचित के लिए उपयुक्त एवं उक्टा के अच्छी मानी जाती है।
7.	जे ·जी–11	100–110	15–18	यह किस्म सिंचित एवं असिंचित तथा उक्टा एवं कालर सड़न के लिए महत्वपूर्ण है।
8.	जे .जी . – 315	115–125	15–18	प्रचलित किस्म एवं उक्टा रोग के लिए प्रतिरोधी किस्म, देर बोनी के लिए अच्छी मानी जाती है।
काबुली चना				
9.	जे .जी .के .–1	110–115	15–18	इसका बीज कीम, सफेद रंग का बड़े आकार का होता है।
10.	जे .जी .के . –2	95–110	15–18	यह अगेती किस्म है, बीज का रंग सफेद कीमी बड़े दाने वाला उक्टा प्रतिरोध किस्म है।
11.	जे .जी .के . – 3	95–110	15–18	काबुली चने की बड़े दाने वाली किस्म बीज चिकना, 100 दानों का व ज न 44 ग्राम होता है।

बीज एवं बीजोपचार– चने के बीज बीजदर दानों के आकार एवं भार पर निर्भर करती है।

क .	आकार के आधार	बीजदर (किलो./हेक्टेयर)	किस्में
1.	छोटे देशी दाने वाली किस्म	65–75 किग्रा.	जे .जी–315, जे .जी–74, जे .जी–322, जे .जी–63, जे .जी–16, विनय
2.	मध्यम दाने वाली किस्म	75–80 किग्रा.	जे .जी–130, जे.जी–11, जे. जी–14, जे .जी–6, जाकी–9218, दिग्विजय, विशाल, आर.वी.जी. –203, आर.वी.जी.–202
3.	काबुली चने की किस्म	100 किग्रा.	जे .जी.के.–1, जे.जी.के. –2, जे.जी .के .–3 काक–2, विराट, कृपा, आई.पी.सी.के .2002–29, आई.पी.सी.के .2004–29, आर.वी.जी.के .–5, आर.वी. जी.के.–101, आर.वी.जी. के.–102, आर वी .जी.–201

बीजउपचार– 2 ग्राम थायरम + 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम या ट्राइकोडर्मा विरडी 4 ग्राम + कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति किग्रा. के साथ राइजोबियम कल्चर 5 ग्राम प्रति किग्रा एवं पी.एस.बी. 5 ग्राम प्रति किग्रा के साथ बीजउपचार करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

बीज उपचार की वैज्ञानिक विधि– चना की बुवाई के पूर्व बीजउपचार आवश्यक होता है। सबसे पहले फफूंदीनाशक से उपचार करें तत्पश्चात उपयुक्त कीटनाशी से उपचारित करना चाहिए एवं अंत में बुवाई पूर्व राइजोबियम एवं पी.एस.बी. से उपचारित करना फसल को कीट रोग एवं व्याधियों को नियंत्रित रखता है एवं इसके करने से जड़ ग्रंथियां अधिक बनती है।

बुवाई का समय– असिंचित अवस्था में चने की बुवाई अक्टूबर के दूसरे सप्ताह तक कर देनी चाहिए, चने की खेती धान की फसल काटने के बाद भी की जाती है। ऐसी स्थिति में बुवाई दिसम्बर के मध्य तक अवश्य कर लेना चाहिए, एवं बीज की गहराई 8–10 सेमी. करें।

बुवाई की विधि– चने की बुवाई पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेमी. एवं पौधे से पौधे की बीच की दूरी 10 सेमी. एवं काबुली चने में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45 सेमी. करें।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन– अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए 20–25 किग्रा. नत्रजन, 50–60 किग्रा. फास्फोरस, 20 किग्रा. पोटाश, 20 किग्रा. गंधक प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग करें। असिंचित अवस्था में 2 प्रतिशत यूरिया, डी.ए.पी. का फसल पर स्प्रे करने से चना की उपज में वृद्धि देखी गयी है।

सिंचाई प्रबंधन– चने की खेती सामान्यत: असिंचित दशा में की जाती है। इसके बावजूद चने में शाखा बनते समय (बुवाई के 40–60 दिन पश्चात) तथा दाना भरते समय सिंचाई करने से अधिक उपज प्राप्त होती है। ध्यान रहे कि फूल आने की अवस्था में सिंचाई न करें।

खरपतवार नियंत्रण– खरपतवार नियंत्रण के लिए 25–30 दिन पश्चात ''हो'' चलाये तथा रासायनिक नियंत्रण के लिए पेन्डामेथिलीन (30 प्रतिशत) दवा बीज बोने के बाद अंकुरण के पहले 1 किग्रा/हे. या पेंडीमिथलीन (38.7 प्रतिशत) दवा 0.68 किग्रा/हे. की दर से छिड़काव करें एवं क्विजोलोफाप इथाइल (5 प्रतिशत) 40–50 ग्राम सक्रिय तत्त्व प्रति हेक्टेयर की दर से 15–20 दिन के बाद छिड़काव करें। जिससे सकरी पत्ती वाले खरपतवार नियंत्रित होते है।

मोथा *(Cyperus rotundus)*

बथुआ *(Chenopodium album)*

हिरनखुरी *(Convolvulus arvensis)*

पीली सेंजी *(Melilotus alba)*

रोग प्रबंधन–

1. उक्टा (विल्ट)–
   1. यह चने की फसल का मुख्य रोग उक्टा के लक्षण बुवाई 30 दिन से फल्ली लगने तक दिखाई देते है।
   2. रोगी पौधे की जड़ को विभाजित किया जाता है तो भूरी काली धारी दिखाई देती है।
   3. यह रोग के लक्षण पौधे के किसी भी अवस्था पर आ सकता है।